प्रतिमान

समय समाज संस्कृति

जनवरी–जून, 2018 (वर्ष 6 अंक 11)

समाज–विज्ञान और मानविकी की पूर्व–समीक्षित अर्धवार्षिक पत्रिका

भारतीय भाषा कार्यक्रम

विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस)

29, राजपुर रोड, दिल्ली–110054 फ़ोन : 91.11. 23942199

ईमेल : pratiman@csds.in; वेबसाइट : www.csds.in/pratiman

+

21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002 फ़ोन : 91.11.23273167, 23275710

ईमेल : vaniprakashan@gmail.com; वेबसाइट : www.vaniprakashan.in

सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डिवेलपिंग सोसाइटीज़, 29, राजपुर रोड, दिल्ली–110054 के निदेशक संजय कुमार के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक अमिता माहेश्वरी, वाणी प्रकाशन, 21–ए, 4695, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002 द्वारा प्रकाशित और ऑप्शन प्रिंटोफ़ास्ट, 41, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली–110092 में मुद्रित। सम्पादक : अभय कुमार दुबे

मूल्य : व्यक्तिगत : ₹ 350, संस्थागत : ₹ 500

विदेशों के लिए : $ 20+डाक ख़र्च अतिरिक्त या किसी अन्य मुद्रा की समकक्ष राशि

ISSN: 2320-8201

अनुक्रम

समीक्षा

विशेष लेख

संधान

झलक

स्मृति-शेष

ज्ञानोत्पादन और भारतीय भाषाएँ : संस्थागत रक्ताल्पता

अभी तक प्रकाशित अंकों पर एक सरसरी नज़र डालने से ही स्पष्ट हो जाता है कि *प्रतिमान* का ज़ोर हिंदी के विमर्शी संसार के सामने हर बार बहुअनुशासनीय बौद्धिक सामग्री पेश करने पर रहा है। चुनावशास्त्र पर एकाग्र तीसरे अंक ('मतदाताओं का संसार') को छोड़ कर बाक़ी नौ अंकों ने अनुसंधान, समीक्षा, परिसंवाद, विश्लेषण, टीका, आख्यान, पुस्तकांश, व्यक्ति-चित्र और दस्तावेज़ों के ज़रिये या तो विमर्श के पूर्व-स्थापित विविध दायरों में योगदान किया है, या कुछ नये दायरों की शुरुआत करने की कोशिश की है। यहाँ मक़सद किसी एक विषय-वस्तु पर केंद्रित अंकों की अहमियत कम करके आँकने का नहीं है। कभी वक़्त की माँग हुई तो ऐसे अंक भी प्रकाशित किये जाएँगे। अगर *प्रतिमान* के अंक किसी एक विषय-वस्तु से बँधे हुए नहीं रहेंगे तो वे विभिन्न अनुशासनों में कार्यरत नये-पुराने विद्वानों की कहीं ज़्यादा बड़ी संख्या को अपनी ओर खींच पाएँगे। इसीलिए अभी *प्रतिमान* अपनी उस प्रमुख चालक-शक्ति के माध्यम से आगे बढ़ रहा है जिसके मर्म में एक ऐसे हिंदी-जगत की कल्पना है जो रचनात्मक साहित्य और पत्रकारिता तक सीमित न रह कर हिंदी में ही सोचने और लिखने वाले शोधकर्ताओं, विचारकों और दार्शनिकों के जीवंत नेटवर्कों और उनके साथ जुड़ी विपुल रचनाशीलता के लिए जाना जाता हो।

हिंदी ही नहीं किसी भी भारतीय भाषा की ऐसी दुनिया बनाना आसान नहीं है, क्योंकि ज्ञानोत्पादन पर अंग्रेज़ी के एकतरफ़ा प्रभुत्व के कारण हमारी सभी भारतीय भाषाएँ इस मामले में एक संस्थागत रक्ताल्पता का शिकार रही हैं। इसलिए न केवल *प्रतिमान* जैसे कई और प्रयासों की विभिन्न भाषाओं में आवश्यकता है, बल्कि इस उद्यम को उस संकल्प से आवेशित करने की ज़रूरत भी है जो कुछ वर्ष पहले उडुपी राजगोपालाचार्य अनंतमूर्ति ने हमारे सामने पेश किया था :

> मैक्समूलर ने संस्कृत में वेद पढ़ने के बाद भी, संस्कृत भाषा में ही ग्रंथ-रचना करने की मूर्खता नहीं दिखाई और जर्मन भाषा में लिखा। जर्मन,

रूसी और पुर्तगाली लोगों ने शेक्सपीयर को पढ़ कर, अध्ययन करके अपनी भाषाओं में समीक्षात्मक ग्रंथों की रचना की। वे फिर अंग्रेज़ी में अनूदित हो कर अंग्रेज़ी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी आलोचनात्मक ग्रंथ बने हैं। लेकिन किसी भी भारतीय की शेक्सपीयर पर लिखी हुई किसी भी किताब को उपयोगी बताने वाले विद्यार्थियों को मैंने नहीं देखा है। राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों को आज तक हम अंग्रेज़ी में पढ़ाते आये हैं। लेकिन किसी भी भारतीय द्वारा इन विषयों पर कहने लायक़ विश्वमान्य रचना की सृष्टि नहीं हुई है। इसका क्या कारण है? ... अंग्रेज़ी-अध्ययन के आधार पर रचित हमारा राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान इस तरह जनता की सम्पत्ति बन कर, भाषा की सम्पत्ति बन कर चिंतकों को लौट कर प्राप्त न हो सका। ... हमने अंग्रेज़ी में पढ़े हुए समाजशास्त्र, साहित्य, विज्ञान, जीवशास्त्र को नित्य जीवन का अंग न बनाकर बुद्धि-लोक में खाद-पानी के बिना भटकने वाले भूतों में बदल दिया है। ... ग्रहण करने के लिए हमें मूलकृति के पास अर्थात् अंग्रेज़ी भाषा के पास जाना चाहिए। लेकिन अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा का उपयोग होना चाहिए। यही सही मार्ग है।

प्रत्येक भारतीय भाषा संख्यात्मक दृष्टि से विशाल 'स्पीच-कम्युनिटी' की श्रेणी में आती है। 'ऑथर-कम्युनिटी' या 'रीडर-कम्युनिटी' के लिहाज़ से भी ये भाषाएँ साहित्य और पत्रकारिता में समृद्ध हैं। अगर इन्हें ज्ञानोत्पादन के क्षेत्र में भी इसी स्तर पर पहुँचाना है तो अनंतमूर्ति का उक्त संदेश हमारे लिए स्पष्ट होना चाहिए : पढ़िए कोई भी भाषा, लेकिन लिखिए केवल अपनी।

नया प्रतिमान इतिहास-लेखन और दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में विशिष्ट सामग्री ले कर आया है। इसके आवरण पर तीन प्रतिनिधि हिंदुस्तानी चेहरे अपने-अपने पारिवारिक जीवन में निमग्न दिखते हैं। विख्यात इतिहासकार ज्ञानेंद्र पाण्डे ने प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन और राजेंद्र प्रसाद के वैवाहिक-पारिवारिक जीवन पर किये गये इस अत्यंत रोचक और गहन अनुसंधान में बारीकी के साथ दिखाया है कि प्रगतिशील, उदार और राष्ट्रवादी विचारों में पगे हुए और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय इन तीनों हस्तियों के अंतरंग जीवन में स्त्री-पुरुष संबंध किस तरह संसाधित होते थे, पुरुष की स्त्री और परिवार से क्या अपेक्षाएँ थीं और उन्हें पूरा करने की प्रक्रिया में स्त्री का जीवन किस तरह से संसाधित होता था। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि यह अनूदित लेख नहीं है, बल्कि ज्ञानेंद्र पाण्डे ने अपनी इस महत्त्वपूर्ण कृति को ख़ास तौर से *प्रतिमान* के लिए मूल हिंदी में ही लिखा है।

इतिहास-अनुसंधान की एक अन्य कृति अठारहवीं सदी के मारवाड़ में प्रचलित डाकण प्रथा (स्त्री को डायन के रूप में चिह्नित करना) के बारे में है। मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में रमी हुई विद्वान कैलाश रानी ने इस शोध के ज़रिये पितृसत्ता द्वारा स्त्री-प्रताड़ना के बदलते हुए रूपों का संधान किया है। निर्मल कुमार पाण्डेय ने रतन लाल द्वारा तीन खण्डों में सम्पादित काशी प्रसाद जायसवाल के वाङ्मय की विस्तृत समीक्षा की है। अनंतराम मिश्र ने विचारों के इतिहास का एक नमूना प्रस्तुत करते हुए सूफ़ी चिंतन के विकास

और उसके भारतीय संदर्भों को आलोकित किया है। आधुनिक भारत के इतिहास के युवा अध्येता सनी कुमार की कृति आंतकवाद शब्द की अवधारणात्मक और व्यावहारिक यात्रा को उकेरती है। सनी ने ही 'समीक्षा' में एक ऐसे प्रश्न को सम्बोधित किया है जिस पर आज तक बहुत कम प्रकाश डाला जा सका है। वे मेजर जनरल कौशिक की कृति के बहाने ब्रिटिश भारतीय सेना और उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद के संबंधों की पड़ताल करते हैं।

दर्शन के क्षेत्र में पाठकों को इस अंक में प्रकाशित प्रसन्न कुमार चौधरी का विशाल लेकिन अत्यंत रोचक और पठनीय लेख सम्भवत: बहुत पसंद आएगा। लुडविग विट्गेन्स्टाइन के जीवन और कृतित्व पर केंद्रित यह रचना न केवल भारतीय दर्शन के हवाले से विट्गेन्स्टाइन के विभिन्न सूत्रीकरणों को सम्बोधित करती है, बल्कि उस युग की वैचारिक प्रवृत्तियों का आख्यान भी पेश करती है जिसमें पश्चिमी दर्शन के इस महारथी ने *ट्रैक्टेटस लॉजिको फ़िलॉसफ़िकस* जैसी कालजयी कृति की रचना की थी। प्रसन्न कुमार चौधरी ने यह लेख अशोक वोहरा द्वारा इस कृति के हिंदी अनुवाद का मूल्यांकन करते हुए *प्रतिमान* के लिए विशेष रूप से लिखा है। उनके द्वारा की गयी अनुवाद की समीक्षा अपने आप में एक नमूना है कि यह काम किस तरह किया जाना चाहिए।

ग्यारहवें *प्रतिमान* का यह हिस्सा हाल ही में दिवंगत हुए अनूठे भारतीय दार्शनिक नवज्योति सिंह को भी समर्पित है। 'दृष्टि' स्तम्भ में श्रद्धांजलिस्वरूप उनका एक लेख भी प्रकाशित किया जा रहा है, और उनके शिष्य व सहयोगी अविनाश झा द्वारा लिखित 'स्मृति-शेष' पाठकों को जानकारी देता है कि पश्चिमी दर्शन के संदर्भ से स्वतंत्र हो कर भारतीय दर्शन को देखने के क्षेत्र में नवज्योति सिंह का क्या योगदान था। दर्शन के अध्येता आलोक टंडन ने 'समीक्षा' में शम्भू जोशी की कृति *अहिंसक श्रम दर्शन* का आलोचनात्मक अर्थ-ग्रहण किया है। सनी कुमार, कैलाश रानी और अनंत राम मिश्र के लेखों के अतिरिक्त 'संधान' में इस बार स्मृति सुमन द्वारा हिंदी फ़िल्मों में सार्वदेशिकतावाद के पहलुओं को रेखांकित किया गया है।

'विशेष लेख' में समाजशास्त्री देवेश विजय ने अपने विस्तृत एथनोग्राफ़िक अध्ययन में दिखाया है कि आर्थिक प्रगति ग़रीबी तो कम कर सकती है, लेकिन केवल उससे दरिद्रों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार नहीं होता। उनकी यह रचना निष्कर्ष निकालती है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद बढ़ी हुई वृद्धि दर ने ग़रीबों की आमदनी तो बढ़ाई, लेकिन इससे न केवल उनकी तकलीफ़ें कम नहीं हुईं, बल्कि उनके स्वरूप और जटिलताओं में बढ़ोतरी भी हुई।

दर्शन और इतिहास के अलावा इस अंक की एक और महत्त्वपूर्ण सामग्री शिक्षा जैसे ज़रूरी विषय पर एकाग्र लम्बा परिसंवाद है जिसे शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय युवा अनुसंधानकर्ता कंचन शर्मा ने संयोजित किया है और जिसमें समाजशास्त्री सतीश देशपांडे, शिक्षाशास्त्री पूनम बत्रा, समाजशास्त्री सतेंद्र कुमार, 'लोकायत' के संचालक नीरज जैन और शिक्षा एवं संस्कृति

उत्थान न्यास के महासचिव अतुल कोठारी ने भाग लिया है। यह परिसंवाद प्रतिमान द्वारा आयोजित विभिन्न विषयों पर किये गये परिसंवादों की परम्परा में ही है। हमारी योजना है कि अगले अंकों में आदिवासी प्रश्न और नयी धार्मिकता के उदय से जुड़े सवालों पर इसी तरह के परिसंवाद आयोजित किये जाएँ।

'परिसंवाद' का ज़िक्र होने पर नौवें *प्रतिमान* में प्रकाशित निवेदिता मेनन के संयोजन में हुई नारीवाद की भारतीय निर्मितियों पर हुई चर्चा की याद आना स्वाभाविक है। इसमें भाग लेने वाली दलित-विदुषी रजनी तिलक का दुर्भाग्य से पिछले दिनों निधन हो गया। वे दलित-नारीवाद की प्रमुख पैरोकार के रूप में जानी जाती थीं। *प्रतिमान* उन्हें श्रद्धा और स्नेह के साथ याद करता है।

'सामयिकी' में नीरज जैन ने केंद्र की भारतीय जनता पार्टी सरकार के अंतिम बजट की आलोचना पेश की है। इसी स्तम्भ में विख्यात समाजशास्त्री और भारतीय भाषा कार्यक्रम की संचालन समिति के वरिष्ठ सदस्य योगेश अटल द्वारा लिखे गये अंतिम लेख (जो उन्होंने *प्रतिमान* के लिए भेजा था) को भी प्रकाशित किया जा रहा। अपनी इस अंतिम रचना में प्रोफ़ेसर अटल ने भारत में चुनावशास्त्र और राजनीति के आपसी संबंधों की व्याख्या की है। *प्रतिमान* द्वारा आयोजित किये जाने वाले व्याख्यानों की शृंखला में इस बार अमिताभ राजन का वह व्याख्यान अविकल प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें उन्होंने भ्रष्टाचार की संस्थागत राजनीति की परतें खोली हैं।

गुज़रे हुए छह महीनों ने वैचारिक-सांस्कृतिक जगत में अहम योगदान करने वाली कई हस्तियों को हमसे छीन लिया। नवज्योति सिंह के अलावा समाजशास्त्री योगेश अटल, चित्रकार रामकुमार, कवि केदारनाथ सिंह, पाकिस्तान की मानवाधिकार कार्यकर्ता अस्मा जहाँगीर और इतिहासकार सतीश चंद्र की स्मृतियाँ ही हमारे बीच रह गयी हैं। श्रद्धांजलिस्वरूप इन हस्तियों के कृतित्व की जानकारी दे रहे हैं (क्रमशः) अविनाश झा, देवेश विजय, प्रयाग शुक्ल, जितेन्द्र श्रीवास्तव और नरेश गोस्वामी।